International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
March-April 2020, Volume-7, Issue-2
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीयता भावना का संक्षिप्त मूल्यांकन

Aditya Kumar Mishra,
Research Scholar, Department of Hindi,
Himalayan Garhwal University, Uttarakhand

Dr. Charu Yadav,
Assistant Professor, Department of Hindi,
Himalayan Garhwal University, Uttarakhand

सार–

जयशंकर प्रसाद कृत चंद्रगुप्त नाटक का यह गीत उनके राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं जन–चेतना को जागृत करने के पावन उद्देश्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने में पूर्णतः सफल है। प्रसाद जी का संपूर्ण व्यक्तित्व राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत है। उनका साहित्य जिस काल में सृजित है वह नवीन भारत के निर्माण का काल है और ऐसे नवीन परिवेश के निर्माण के लिए जयशंकर प्रसाद से उपयुक्त साहित्यकार और कोई नहीं हो सकता उनका साहित्य राष्ट्रीयता की जिस भावभूमि पर आधारित है वह साहित्य जगत में प्राप्त कर पाना सहज नहीं है। उन्होंने तत्कालीन समाज को स्वतंत्रता आंदोलन से सक्रिय रूप से जोड़ने के लिए अपने नाटकों में प्राचीन भारतीय इतिहास के कथानक से देश के गौरव और महान संस्कृति का चित्रण करते हुए अपने नाटकों को समकालीन संदर्भों से जोड़ने का सफल प्रयास किया है। भले ही उनकी कृतियाँ रंगमंच पर उतनी सफल न रही हो, पर पाठकों तक अपनी भावनाओं को पहुँचाने में प्रसाद जी सफलता प्राप्त की है।

प्रस्तावना–

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती– स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती–
अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़–प्रतिज्ञ सोच लो, प्रशस्त पुण्य पन्थ है– बढ़े चलो, बढ़े चलो।[1]

हिंदी साहित्य में शायद ही किसी अन्य लेखक ने भारतीय संस्कृति, समृद्धि, शक्ति, औदात्य और राष्ट्रीयता की भावना का ऐसा भास्वर चित्रण किया हो।[2] प्रायश्चित, विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त जयशंकर प्रसाद के प्रमुख ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर आधारित नाटक है जिनके माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए सामान्य जन में एक अलख जगाने का सफल प्रयास किया।

प्रायश्चित नाटक जयचंद के मूर्खतापूर्ण कुचक्र के कारण भारत में पृथ्वीराज चौहान की पराजय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है जिसका स्पष्ट प्रभाव अंकित करते हुए नाटक के प्रथम अंक में प्रथम दृश्य में लेखक ने दो विद्याधारियाँ सजृित की है एवं उनका वर्तालाप अत्यंत प्रभावशाली है। दृश्य उस रणभूमि का है जहाँ पृथ्वीराज चौहान की करारी पराजय हुई थी पहली को उसके बारे में कोई जानकारी नहीं है। इस पर व्यंग्य करते हुए दूसरी कहती है कि–''तुझे तो अपने गंधमादन[3] विलास से छुट्टी नहीं। क्या मालूम कि संसार में क्या हो रहा है। पहली को पराजय का कारण बताते हुए दूसरी कहती है– ''यदि भाई का शत्रु भाई न हो यदि शैलवासिनी सरिता ही श्रृंग न तोड़े तो भला दूसरा क्या कर सकता है।''[4] अपने प्रथम नाटक के माध्यम

से ही जयशंकर प्रसाद ने अत्यंत कुशलता से यह स्पष्ट कर दिया कि पृथ्वीराज चौहान की पराजय मात्र एक राजा की पराजय नहीं वरन् संपूर्ण भारतवर्ष की पराजय थी जिसने आक्रांताओं के लिए भारत के द्वार खोल दिए, जिसका प्रमुख कारण भारतवासियों के हृदय में देश के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना का आभाव था। राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना के आभाव ने ही अंग्रेजों के शासन की जड़े हमारे देश में इतनी मजबूत कर ली थी कि भारत को स्वतंत्रता के लिए लंबा संघर्ष करना था।

जयशंकर प्रसाद की पूर्ण नाट्य कृति 'विशाख' में परस्पर द्वन्द्व, जातिगत भेद, एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन जैसे विषयों को अत्यंत प्रभावशाली शैली में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। संपूर्ण नाटक में सत्ता और धर्म के आपसी सहयोग से निम्न जातियों के शोषण का पुरजोर विरोध किया गया है। इसी संदर्भ में विशाख कहता है–''ऐसों को धर्मात्मा कहें या दुष्टात्मा! क्योकि वे यह नहीं जानते कि दूसरों का गला काटकर कोई धर्मशाला मठ या मंदिर बना देने से ही उनका पाप नहीं धो जाता।'' लेखक की यह गहन चिंतनशीलता उन्हें केवल इतिहास के स्वर्णमयी लोक में विचरने वाला लेखक नहीं बनाती वरन ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से वे नाटकों को इतना संवेदनशील बना देते हैं कि ऐसा लगता कि मानो ये पात्र हमारे आस–पास की परिस्थितियों का चित्रण कर रहें हों और उनका यह प्रयास इतना सहज है कि पाठक अत्यंत सहजता से यह अनुभूत करने लगता है कि इन सभी परिस्थितियों का तानाबाना उसी के चारों ओर का है। यही कारण है कि जयशंकर प्रसाद की नाट्य कृतियों को किसी काल विशेष की सीमा में नहीं बांधा जा सकता वे कालजयी है।

जनमेजय का नागयज्ञ में लेखक ने जातिगत भेदभाव एवं अंतर्जातीय विवाह के विषय में व्याप्त पूर्वाग्रह पर कुठाराघात किया है जो समाज में समरसता के लिए आवश्यक है और यही भावना देश की प्रगति एवं उसे अक्षुण्ण बनाए रखने में भी सक्षम है। जिसका प्रमाण नाटक का वपुष्टमा और यादव कन्या का संवाद है–

''वपुष्टमा– छि! आर्य ललना होकर नाग जाति के पुरुष से विवाह किया! तभी तो यह लांछना भोगना पड़ती है।

सरमा– सम्राज्ञी! मैं तो एक मनुष्य जाति देखती हूँ– न दस्यु और न आर्य! न्याय की सर्वत्र पूजा चाहती हूँ चाहे वह राजमंदिर में हो, या दरिद्र कुटीर में।''[5]

सन् 1920–30 ई के मध्य भारतवर्ष की राजनीतिक परिस्थिति में व्यापक परिवर्तन हो रहे थे। राजनीतिक पटल पर अब पूर्ण स्वराज्य पाने की उत्कंठ अभिलाषा स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। जवाहर लाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस जैसे प्रखर एवं तेजस्वी व्यक्तित्व अब स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष अवसन्न भाव से संघर्षरत थे और भावी पीढ़ी को एक सुंदर और समृद्ध भारत देने के प्रयास में रत थे। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यदि जयशंकर प्रसाद के नाटक स्कंदगुप्त और चंद्रगुप्त की सृजन प्रक्रिया पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद इतिहास में मग्न थे या वर्तमान के प्रति चौकन्ने। आतातायी आक्रांताओं से निष्काम कर्मयोगी की तरह युद्धरत सर्वहारा स्कंदगुप्त अपने भीतर गाँधीवादी अंतचेतना को समेटे हुए है। प्रसाद ने अपनी अंतर्दृष्टि से देख लिया था कि स्कंदगुप्त के द्वारा स्वतंत्र कराया गया राष्ट्र फिर किसी पुरगुप्त को सौंपकर इतिहास स्वयं को अवश्य दोहराएगा। इसी का चित्रण स्कंदगुप्त में दिखाई देता है। इसी कारण स्कंदगुप्त अधिकार सुख को मादक और सारहीन कहता है।[6]

नाटक चंद्रगुप्त की रचना कर चंद्रगुप्त की रचना कर जयशंकर प्रसाद ने कई सवालों का जवाब दिया है। इतिहासकार दंतकथाओं का सहारा लेकर चाणक्य को ईष्यालु, स्वकेन्द्रित एवं प्रतिशोधी व्यक्ति सिद्ध करते

हैं। किंतु प्रसाद की दृष्टि इन सभी से भिन्न है वे चाणक्य को एक महान राजनीति ज्ञाता, राष्ट्रीय चिंतक एवं आदर्श गुरु के रूप में चित्रित करते हैं। प्रसाद की दृष्टि इतिहास के उस पक्ष की ओर गई है जिस ओर किसी साहित्यकार ने ध्यान नहीं दिया। चंद्रगुप्त के पूर्व भी भारत सोलह जनपदों में विभक्त था और अंग्रजों के शासन में भी अलग–अलग रियासतों में। इसी ओर संकेत करते हुए चाणक्य का संवाद अत्यंत समाचीन प्रतीत होता है–'' तुम मालव हो और यह मागध। यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परंतु आत्मसम्मान इतने से ही संतुष्ट न होगा। मालव और मागध को भूलकर जब तुम आर्यावर्त्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा।''[7] अतः लेखक ने तत्कालीन परिस्थितियों का अपनी रचना में समावेश करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि जब अखंड भारत की कल्पना साकार नहीं होगी तब तक स्वतंत्र और खुशहाल भारत का स्वप्न भी पूर्ण नहीं होगा। इसी नाटक में गुरुकुल के दो स्नातकों के वार्तालाप के माध्यम से जयशंकर प्रसाद ने अंग्रजों के चरित्र का अत्यंत सटीक चित्रण किया है–

''स्नातक तुम ठीक कह रहे हो। महापद्म का जारज पुत्र नंद केवल ष्शस्त्र बल और कूटनीति के द्वारा सदाचारों के सिर पर ताण्डव नृत्य कर रहा है। वह सिद्धांत विहीन, नृशंस, कभी बौद्धों का पक्षपाती, कभी वैदिकों का अनुयायी बनकर दोनों में भेदनीति चलाकर बल संचय कर रहा है। मूर्ख जनता धर्म के नाम पर नचाई जा रही है।''[8] यह संवाद अंग्रजों की फूट डालो और राज करो की नीति को स्पष्ट करता है।

क्रांतिकारियों ने जो आजादी का सपना संजोया था उसे ऐतिहासिक माध्यम से प्रसाद ने नाटक के पात्र सिंहरण के संवादों के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है–

''एक अग्निमय गंधक का स्रोत आर्यावर्त्त के लौहे–अस्त्रागार में घुसकर विस्फोट करेगा। चंचला रणलक्ष्मी इंद्रधनुष–सी विजय–माल हाथ में लिए उस सुंदर नील लोहित प्रलय–जलद में विचरण करेगी और वीर हृदय मयूर सा नाचेंगे।''[9]

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों को अत्यंत सहजता से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य साहित्य के माध्यम से एक ऐसे वातावरण का निर्माण करना था जो विदेशी ष्शासकों का भारतवर्ष से बाहर निकालने में जन सामान्य में नवीन उत्साह का संचार कर सके। प्रसाद अतीत का उपयोग व्यापक जीवित आयाम के रूप में करते है और यही कारण है कि उन्होंने अपने नाटकों के लिए ऐसे पात्रों का चयन किया जो जीवन की सर्वांगीणता के एक आदर्श उदाहरण है। उन्होंने इतिहास का पुनर्लेखन नहीं किया वरन ऐसे चरित्रों का चयन किया है जो सर्वकालिक है। पात्र ऐतिहासिक एवं वास्तविक होते हुए भी तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश को व्यक्त करने में समर्थ है।[10]

आज फिर हमारा देश विघटन के दोराहे पर खड़ा है। कटट्र साम्प्रदायिक शक्तियाँ देश को जर्जर एवं विभाजित करने को आतुर है। क्षेत्रियता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, असहिष्णुता जैसे शब्द हमारे देश की संस्कृति एवं उसकी आत्मा को क्षत–विक्षत कर रहे है। सामान्य नागरिक के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ जीवन जीना दूभर हो गया है। देश की कृतघ्न शक्तियाँ विदेशी ताकतों से मिलकर अपने ही देश को खंड–खंड करने के षडयंत्र में लगी हुई है। ऐसे में जयशंकर प्रसाद की नाट्य रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासांगिक है जितनी कि उस समय थी।

जयशंकर प्रसार के नाटक

जयशंकर प्रसाद ने 'उर्वशी' एवं 'बभ्रुवाहन' चम्पू तथा अपूर्ण 'अग्निमित्र' को छोड़कर आठ ऐतिहासिक,

तीन पौराणिक और दो भावात्मक, कुल तेरह नाटकों की सर्जना की। 'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़कर ये नाटक मूलतः इतिहास पर आधृत हैं। इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के इतिहास से सामग्री ली गयी है। उनके नाटकों में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना इतिहास की भित्ति पर संस्थित है। 'बभ्रुवाहन' चम्पू को 'जयशंकर प्रसाद ग्रन्थावली' में पूर्व में असंकलित रचना के रूप में संकलित किया गया है, परन्तु यह रचना पहले भी 'प्रसाद की सम्पूर्ण कहानियाँ एवं निबन्ध' संग्रह में 'चित्राधार' से संकलित 'विविध' रचना के रूप में संकलित हो चुकी है।

जयशंकर प्रसाद ने जिस समय नाटकों की रचना आरंभ की उस समय भारतेन्दु द्वारा विकसित हिन्दी रंगमंच की स्वतंत्र चेतना क्रमशः क्षीण हो चुकी थी। हालाँकि पारसी थिएटर का भी एक समय ऐतिहासिक योगदान रहा थाय स्वयं प्रसाद जी ने स्वीकार किया है कि ''पारसी व्यवसायियों ने पहले–पहल नये रंगमंच की आयोजना की'', परंतु विडंबना यह थी कि पारसी थियेटर का विकास लोकरुचि को उन्नत बनाते हुए सामाजिक समस्याओं को कलात्मक रूप से सामने लाने तथा उसके समाधान की ओर प्रेरित करने की अपेक्षा एक प्रकार की विकृत रुचि और भोंड़ेपन का प्रचार करने की ओर होते चला गया। इसके विपरीत प्रसाद जी के पूर्व से ही वैचारिक क्षेत्र की स्थिति यह थी कि साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और अध्यात्म में विवेकानन्द का एक स्वर से आर्य साम्राज्य की एकता और आर्य संस्कृति को नष्ट होने से बचाने का, उसके विभिन्न गणों, समाजों और जातीयताओं को एक सूत्र में पिरोने का विवेकवादी और आनन्दवादी दोनों रूपों में प्रयत्न चल रहा था। ऐसे में प्रसाद जी ने अपने साहित्य जिसमें नाटक प्रमुखता से शामिल थे, की रचना हेतु गहन चिन्तन–मनन को एक आवश्यक उपादान के रूप में अपनाया, जिसके स्पष्ट प्रमाण 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में पर्याप्त रूप से मिलते हैं। जयशंकर प्रसाद की इस गहरी चिंतनशीलता ने हिन्दी नाटकों को पहली बार बौद्धिक अर्थवत्ता प्रदान की। उनके नाटकों की भूमिकाएँ उनकी अनुसन्धानपरक तथ्यान्वेषी दृष्टि का स्पष्ट संकेत देती हैं। डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र के शब्दों में–''अपने समय को परिभाषित करने के क्रम में अपने अतीत के प्राणतत्त्व को आत्मसात करते चलना उनका स्वभाव था। विचार, भाषा, शिल्प, यथार्थबोध, सभ्यता–समीक्षा, राष्ट्रीय और मानवीय चेतना, दार्शनिकता, रंगमंचीयता आदि की दृष्टि से वे सतत जागरूक रचनाकार हैं। 'उर्वशी चम्पू' से लेकर 'रुवस्वामिनी' तक की यात्रा नाटक की दृष्टि से अनवरत विकास और सतत जागरूकता की यात्रा है।''

प्रसाद जी ने नाट्य लेखन के आरंभ से ही पौराणिक एवं ऐतिहासिक दोनों परिप्रेक्ष्य को वैचारिक उपादान के रूप में सामने रखा है। एक ओर जहाँ महाभारत के प्रसंगों पर आधारित 'सज्जन' में युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठा और सज्जनता को एक मूल्य के रूप में प्रस्तुत करना उनका लक्ष्य रहा है, वहीं दूसरी ओर प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र जयचन्द पर केंद्रित 'प्रायश्चित्त' में राष्ट्रप्रेम को मूल्य मानकर देशद्रोह का प्रायश्चित आत्मवध माना गया है तथा 'चन्द्रगुप्त' नाटक के आरंभिक रूप 'कल्याणी परिणय' में पहले ही दृश्य में चाणक्य के स्वर में 'अन्धकार हट रहा जगत जागृत हुआ' के द्वारा प्रकृति और जागरण दोनों का संकेत किया गया है। स्वाभाविक है कि आरंभिक रचनात्मक प्रयत्न के रूप में इनमें पर्याप्त अनगढ़ता है, परंतु प्रसाद की दृष्टि एवं दिशा के संकेत स्पष्ट मिल जाते हैं। बाद में उन्होंने पौराणिक की अपेक्षा ऐतिहासिक कथानक को अधिक अपनाया तथा 'राज्यश्री' से लेकर 'रुवस्वामिनी' तक में मौर्यकाल से लेकर हर्ष के समय तक से भारत के गौरवमय अतीत के प्रेरक चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरणीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। वैचारिक

रूप से प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटक के पात्रों को लेकर एक समय प्रेमचन्द, एवं पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र, जैसे लेखकों ने भी अपनी निजी मान्यता एवं आरंभिक उत्साह के कारण 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' अर्थात् सामन्ती संस्कारों को पुनरुज्जीवित करने के आरोप लगाये थे, जबकि 'स्कन्दगुप्त' में देवसेना बड़े सरल शब्दों में गा रही थी–

''देश की दुर्दशा निहारोगे
डूबते को कभी उबारोगे
हारते ही रहे न है कुछ अब
दाँव पर आपको न हारोगे
कुछ करोगे कि बस सदा रोकर
दीन हो दैव को पुकारोगे
सो रहे तुम, न भाग्य सोता है
आप बिगड़ी तुम्हीं सँवारोगे
दीन जीवन बिता रहे अब तक
क्या हुए जा रहे, विचारोगे ?''

और पर्णदत्त भीख भी माँगता है तो भीख में जन्मभूमि के लिए प्राण उत्सर्ग कर सकने वाले वीरों को माँगता है। इसलिए डॉ० रामविलास शर्मा स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–'स्कन्दगुप्त' में प्रसादजी ने दिखाया है कि हूणों के आक्रमण से त्रस्त और बिखरी हुई जनता में फिर से साहस–संचार करके स्कन्दगुप्त और उसके साथियों ने हूणों को समरभूमि में पराजित किया और उन्हें सिन्धु पार खदेड़ दिया। ब्रिटिश साम्राज्य से आक्रान्त देश में यह नाटक लिखकर प्रसाद जी ने सामयिक राजनीति की भी एक गुत्थी सुलझायी थी।

स्पष्ट है कि प्रसाद जी अपने युग–जीवन के यथार्थ को मार्मिक रूप से अभिव्यक्त करते हुए एक तरह से आँख में उँगली डालकर जनता को जगा रहे थे। डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र ने बहुत ठीक लिखा है कि–'स्कन्दगुप्त' एक प्रकार से प्रसाद द्वारा लड़ा जाता हुआ राष्ट्रीय संग्राम है जो साहित्य के द्वारा लड़ा जा रहा है। प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों पर लगाये जा रहे आरोपों में निहित संकीर्णता एवं अदूरदर्शिता को उस समय भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे मूर्धन्य मनीषी तथा दूरदृष्टि–सम्पन्न आलोचक भली–भाँति समझ रहे थे तथा इस पद्धति के नाटकों की मौलिक सर्जनात्मकता की व्यापकता एवं गहराई को पहचानते हुए एक विशिष्ट साहित्यरूप के रूप में न केवल इसकी महत्ता को रेखांकित कर रहे थे बल्कि विरोधियों की मानसिकता एवं समझ पर पुरजोर शब्दों में तार्किक रूप से प्रश्नचिह्न भी लगा रहे थे।

वस्तुतः राष्ट्रीय भावबोध की अभिव्यक्ति प्रसाद के नाट्य विधान का मूलाधार कहा जा सकता है। इतिहास के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त करने का सजग प्रयास उनके अधिकतर नाटकों में द्रष्टव्य है। प्रसाद का विश्लेषण था कि आधुनिक काल में सामाजिक समरसता और राष्ट्रीयता के आड़े तीन बाधाएँ आती हैं–सांप्रदायिकता की भावना, प्रादेशिकता के तनाव तथा पुरुष–नारी के बीच असमानता की स्थिति। अपने प्रधान नाटकों 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' तथा 'रुवस्वामिनी' में उन्होंने इन्हीं का समाधान देने का यत्न किया है।

रंगमंचीय अध्ययन

प्रसाद जी के नाटकों पर अभिनेय न होने का आरोप भी लगता रहा है। आक्षेप किया जाता रहा है कि वे रंगमंच के हिसाब से नहीं लिखे गये हैं, जिसका कारण यह बताया जाता है कि इनमें काव्यतत्त्व की प्रधानता, स्वगत कथनों का विस्तार, गायन का बीच–बीच में प्रयोग तथा दृश्यों का त्रुटिपूर्ण संयोजन है। किंतु उनके अनेक नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। उनके नाटकों में प्राचीन वस्तुविन्यास और रसवादी भारतीय परंपरा तो है ही, साथ ही पारसी नाटक कंपनियों, बँगला तथा भारतेंदुयुगीन नाटकों एवं शेक्सपियर की नाटकीय शिल्पविधि के योग से उन्होंने नवीन मार्ग ग्रहण किया है। उनके नाटकों के आरंभ और अंत में उनका अपना मौलिक शिल्प है जो अत्यंत कलात्मक है। इसके बावजूद बाबू श्यामसुंदर दास से लेकर बच्चन सिंह तक हिंदी आलोचना की तीन पीढ़ियाँ एक प्रवाद के रूप में मानती रही है कि प्रसाद के नाटक अभिनेय नहीं हैं। परंतु नयी पीढ़ी के वैसे आलोचक जो सीधे रंगमंच से जुड़े रहे हैं, बिल्कुल भिन्न विचार प्रकट करते हैं।

निष्कर्ष–

आज के इस बदलते परिवेश में राष्ट्रवाद की भी सीमा एवं परिभाषा निर्धारित कर दी गई है। राष्ट्रवादिता को अतिराष्ट्रवाद से जोड़कर देखा जा रहा है। अत्यंत खेद का विषय है कि राष्ट्रवाद जैसी पवित्र भावना में भी नकारात्मकता के ष्शब्दों को स्थान दिया जा रहा है। चंद्रगुप्त नाटक की नारी पात्र मालविका एक ऐसी स्त्री है जो अपने राष्ट्र के लिए पिता और भाई से भी द्रोह करने के लिए तैयार है। जयशंकर प्रसाद ने इस पात्र के माध्यम से यह भावना स्थापित करने का प्रयास किया है कि राष्ट्रप्रेम हर संबंध से ऊपर है, राष्ट्र सर्वोपरि है। यहाँ जयशंकर प्रसाद महान क्रांतिकारी अरविंद घोष के विचारों से पूर्णतः सहमत प्रतीत होते हैं जिन्होंने''राष्ट्रवाद क्या है? की व्याख्या करते हुए अपने विचार व्यक्त किए है कि–'' राष्ट्रवाद मात्र एक राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। राष्ट्रवाद ईश्वर प्रदत्त धर्म है। राष्ट्रवाद एक पंथ है जिसमें आपको रहना होगा।. .....राष्ट्रवाद अमर है यह मर नहीं सकता।''

आज जब हम इतनी समस्याओं से जूझ रहे है और कोई उचित मार्ग नहीं दिखाई देता तो ऐसे में हमें आज के दौर में जयशंकर प्रसाद जैसे साहित्यकार की कमी अत्याधिक विचलित कर देती है जो साधारण जनता की रग–रग से परिचित थे और जानते थे कि किस प्रकार जनता में नवीन चेतना का संचार कर उससे देशहित साधा जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. प्रसाद, जयशंकर, चंद्रगुप्त (नाटक), पृ. 160.
2. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 550.
3. प्रसाद गंधमादन या आयवरी टॉवर में बैठे लोगों की आलोचना करते हैं और यथार्था से सीधे साक्षात्कार हेतु प्रेरित करते हैं, और लोग उन्हें सामंतवादी,पलातक, मधुचर्या में लीन वायवी कहते हैं।–श्रोत्रिय, प्रभाकर, प्रसाद की प्रासंगिकता, पृ.9
4. प्रसाद, जयशंकर, प्रायश्चित.
5. प्रसाद, जयशंकर, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ.30
6. प्रसाद, जयशंकर, स्कंदगुप्त, पृ. 47
7. प्रसाद, जयशंकर, चंद्रगुप्त, पृ.42
8. प्रसाद, जयशंकर, चंद्रगुप्त, पृ.53

9. प्रसाद, जयशंकर, चंद्रगुप्त, पृ. 43
10. मिश्रा स्वाति. जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भारतीय नवोन्मेश, स्नातकोत्तर एवं शोध संस्थान, हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर।